नियमसार, १५० कलश है। १०६ गाथा का कलश है न? १५०।

जिनप्रभुमुखारविन्दविदितं स्वरूपस्थितं,
मुनीश्वरमनोगृहान्तरसुरत्नदीपप्रभम्।
नमस्यमिह योगिभिर्विजितदृष्टिमोहादिभिः,
नमामि सुख-मन्दिरं सहज-तत्त्वमुच्चैरदः ।।१५०।।

आहाहा! यह प्रत्याख्यान की बात चलती है। सच्चा प्रत्याख्यान किसे कहना? कि **जो जिनप्रभु के मुखारविन्द से विदित (प्रसिद्ध) है,...** आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त गुण का सागर, भण्डार जिनेश्वर के मुखारविन्द से वह प्रसिद्ध है। आहाहा! यह दूसरे को वह खबर नहीं पड़ी। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वह कहते हैं। **जिनप्रभु के मुखारविन्द से...** प्रभु की वाणी से वह प्रसिद्ध है। आत्मतत्त्व प्रभु की वाणी से प्रसिद्ध है और आनन्दकन्द प्रभु अन्दर है। यह शरीर, वाणी, मन तो भिन्न है। ये तो उसमें है नहीं परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम भी उसमें नहीं है। वे तो विकार हैं। ऐसा भगवान के **मुखारविन्द से विदित (प्रसिद्ध) है,...** ऐसा कहते हैं।

कोई कहे कि भाई! आत्मा तो बहुत दुर्लभ है। वह कहीं ख्याल में नहीं आता। यहाँ कहते हैं, प्रभु के मुखारविन्द से निकला हुआ - प्रसिद्ध है। आहाहा! अन्दर देह में चैतन्य हीरा निर्मलानन्द प्रभु वीतरागस्वरूप, आनन्दस्वरूप विराजमान है। आहाहा! इसलिए ऐसा कहा कि दूसरों के अतिरिक्त यह नहीं है, ऐसा कहते हैं। जिनवर **जिनप्रभु के मुखारविन्द से विदित...** मुख से तो अपेक्षित कहा है। ओमध्वनि आती है न? परन्तु ऐसे लोग मुख से कहते हैं। फिर पूरे शरीर में से ओमध्वनि उठती है। 'ॐकारध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै।' भगवान को वीतरागता होती है, केवल (ज्ञान) होता है, तब ओमध्वनि उठती है। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ हिलता नहीं। पूरे शरीर में से ओम की ध्वनि उठती है। उसमें सब बारह अंग का स्वरूप आता है। यह कहते हैं कि उस मुखारविन्द में से। उसे मुखरूपी अरविन्द—कमल। व्यवहार में चलता है, इसलिए बोले हैं। उसके कारण प्रसिद्ध है। आहाहा! विदित है। अनजाना नहीं है। आहाहा! चैतन्य हीरा अन्दर, सब

करोड़ों-अरबों के हीरा हैं, उन सबको जाननेवाला तो भगवान आत्मा है। हीरा की कीमत करना उसे आता है? यह करे कि इसकी अपेक्षा उज्ज्वल, इसकी अपेक्षा उज्ज्वल। यह हीरा तो स्वयं यह है। अन्दर चैतन्य हीरा है परन्तु उसका माहात्म्य नहीं आता। परीक्षा करने का समय नहीं रहता; इसलिए आत्मा क्या है, वह कुछ नहीं। दूसरी चीज़ की महिमा का पार नहीं।

यहाँ तो प्रभु के मुख में से निकला हुआ प्रसिद्ध है। आहाहा! पहले देव को लिया। सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ के मुखारविन्द—मुखरूपी अरविन्द—कमल में से निकली हुई वाणी प्रसिद्ध है। आत्मा अन्दर शुद्धतत्त्व है, ऐसा प्रसिद्ध है। पवित्र का पिण्ड है, उसमें राग का कण नहीं है, जिसमें मोह का लेप नहीं है। ऐसा निर्लेप। आहाहा! भगवान के मुख में से निकला हुआ है, वह निर्लेप तत्त्व प्रसिद्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : है तो फिर उपदेश किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, प्रसिद्ध है। परन्तु किसे? जो सुने-समझे, उसे न? समझे उसे प्रसिद्ध है न? न समझे उसे कहाँ? मुखारविन्द से निकला हुआ विदित है - परन्तु किसे? जो इसे ऊपर कहा कि ऐसा है, ऐसा जिसने अन्दर में देखा-जाना, तब उसके लिये प्रसिद्ध है। आहाहा! उसे तो यह आत्मा-आत्मा कहो, इसलिए आत्मा-आत्मा करे परन्तु जगत में आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ ही बड़ी नहीं है। यह आत्मा महाप्रभु है, परमेश्वर है, भगवान है, वीतराग है, सहजानन्द की मूर्ति है। जगत में तीन लोक को, तीन काल को जाननेवाला तत्त्व हो तो यह एक ही आत्मा है। एक ही आत्मा ऐसा है। आहाहा! ऐसे तत्त्व के लिये बहुत गम्भीर पुरुषार्थ चाहिए। भगवान के मुख में से निकला है न, कहते हैं... आहाहा!

यह आत्मा कितना है और कैसा है? यह तीन लोक के नाथ के मुखरूपी कमल में से निकला हुआ है। आहाहा! लोगों को बाहर के धन्धे के कारण दरकार नहीं होती।

मुमुक्षु : बाहर के धन्धे में से ऊँचे नहीं आते।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे दिन धन्धा। शान्तिभाई कहते हैं। धन्धा, स्त्री, पुत्र के लिये यह करे। ...अपना ... दूसरे का करने में उसका करे। ....किसी का कर्ता-फर्ता नहीं। आहाहा! ऐसा विदित है। एक बात।

दूसरा, **जो स्वरूप में स्थित है,...** उस स्वरूप में आत्मा स्थित है। भगवान से तो प्रसिद्ध है, परन्तु स्वरूप स्वयं स्वरूप में स्थित है। वह स्वरूप कोई राग में, पुण्य में, दया, दान में कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। प्रभु स्वरूप में स्थित है। चैतन्यस्वरूप अन्दर चैतन्य चमत्कार अनन्त-अनन्त आनन्द और शान्ति का सागर, जिसकी अपार महिमा, गुण की खान-निधान, वह वस्तुस्वरूप में स्थित है। ऐसा कि नहीं और हमें बताना है, ऐसा नहीं है। अन्दर है, स्थित है। आहाहा! तेरी नजर राग और पुण्य के ऊपर से हटती नहीं। पर्याय के ऊपर से हटती नहीं, इसलिए तुझे दिखता नहीं। आहाहा! कहाँ गये? देवीलालजी! आहाहा!

वाह! शैली तो देखो! तीन लोक के नाथ से तो प्रसिद्ध है न, प्रभु! तू अप्रसिद्ध कर, परन्तु प्रभु से तो प्रसिद्ध है। आहाहा! और प्रसिद्ध, वह भी स्वरूप में स्थित ही है। स्वरूप से बाहर नहीं आया। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय चाहे जिस स्थान में हो, परन्तु वह द्रव्य तो द्रव्य में स्थित ही है। आहाहा! वस्तु जो द्रव्य ध्रुव है, वह तो स्वरूप में स्थित है। पर्याय के भेद भले अलग प्रकार के हों। वह पर्याय कोई टिकती वस्तु नहीं है। वह तो एक समय की दशा है अन्दर वस्तु जो है, वह तो अन्दर त्रिकल टिकती स्वरूपस्थित है। है, उसे प्राप्त करना है - ऐसा कहते हैं। भगवान ने कहा है, इसलिए प्रसिद्ध है और है, उसे प्राप्त करना है। आहाहा! अब ऐसा धर्म। यह तो सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो वह धर्म। वह धर्म आया। इसे धर्म का भान भी कहाँ है? ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, बापू! आहाहा! दो, यह दो बातें हुईं।

तीसरी, **मुनीश्वरों के मनोगृह के भीतर...** सच्चे सन्त जो मुनि होते हैं, उनके मनरूपी घर में **भीतर सुन्दर रत्नदीप की भाँति प्रकाशित है,...** आहाहा! छठवें काल के नहीं लिये। उत्कृष्ट प्रकाशित होता है, उसे लिया। **मुनीश्वरों के मनोगृह के भीतर...** अन्तर में-अन्तर में **सुन्दर रत्नदीप की भाँति...** सुन्दर रत्न का दीपक हो, सुन्दर रत्न का दीपक; वैसे सुन्दर ज्ञान का दीपक भीतर प्रकाशित है। आहाहा! एक-एक बोल तो निहाल कर डालता है। पुरानी रूढ़ि जाए, तब यह बात जँचे ऐसी है। आहाहा! अरे रे..! मैं तो अकेला हूँ। मेरा कोई नहीं है। मैं किसके लिये करूँ? कोई मेरा नहीं तो मैं किसके लिये करूँ? आहाहा! और मैं किसी का नहीं तो वह मेरे लिये करे, ऐसा है नहीं। आहाहा!

और यह क्रमबद्ध में तो यह आता है। क्रमसर में यह भगवान रत्नदीपक है, उसका ज्ञान-भान हुआ। अर्थात् मैं किसी का बिगाड़ सकूँ या मैं पर से बिगड़ूँ, ऐसी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो **सुन्दर रत्नदीप की भाँति प्रकाशित है,...** यह मुनि लिये। तीनों लिये—देव, गुरु अर्थात् स्वरूपस्थित और मुनि। आहाहा! **मुनीश्वरों के मनोगृह के...** उन्हें मुनि कहते हैं, बापू! आहाहा! मुनि किसे कहना। आहाहा! जिनके मनोगृहरूपी घर में, भीतर में **सुन्दर रत्नदीप की भाँति प्रकाशित है,...** उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! चैतन्य हीरा जिसके हृदय में चमकता है। चमत्कार, चमत्कारिक वस्तु है। आहाहा! अनन्त काल से अज्ञान में और अन्धकार में होने पर भी वह वस्तु तो वस्तुरूप रही है। वह वस्तु तो अपने स्वरूप से स्थित है। है, उसे दृष्टि में लेकर प्रगट करना है। आहाहा!

अब ऐसा क्रियाकाण्ड से कितना होता होगा? क्रियाकाण्ड करके मर जाए। सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये। वे कहें गिरनार की यात्रा की। यह सब क्रियाएँ राग है। अन्दर भगवान चैतन्य हीरा (है)। यह भाव आते हैं, अशुभ से बचने के लिये भाव आते हैं परन्तु यह भाव शुभ है। यह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! धर्म तो आत्मा स्वभाव में त्रिकाली शुद्ध स्थित है। त्रिकाली स्वभाव में, ध्रुव में स्थित है। वह रतन मुनिरूपी गृह में-घर में अन्दर में सुरत्न की भाँति प्रकाशित है। आहाहा! भाषा भी की है, यह मुनि हैं, हों! और मुनि की यह... आहाहा!

जो इस लोक में दर्शनमोहादि पर विजय प्राप्त किये हुए योगियों से नमस्कार करनेयोग्य है... पीछे यह लिया। भगवान से विदित है, स्वरूपस्थित है, मुनिश्वरों के घर के भीतर रत्न की भाँति प्रकाशित है परन्तु जो **लोक में दर्शनमोहादि पर विजय प्राप्त...** है। मिथ्यात्व पर विजय प्राप्त की है, उन योगियों को नमस्कार करनेयोग्य है। ऐसे योगियों को वह आत्मा नमस्कार करनेयोग्य है। आहाहा! ऐसे योगियों को भगवान नमस्कार करनेयोग्य है, वह तो व्यवहार है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। फिर भाषा क्या लेना? कि इस लोक में दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व आदि पर विजय प्राप्त ऐसे ज्ञानी, ऐसे मुनि, ऐसे धर्मी, ऐसे सन्तों से भी नमस्कार करनेयोग्य वह चीज़ है। आहाहा!

तथा जो सुख का मन्दिर है,... आत्मा सुख का मन्दिर है। आहाहा! जिसके सामने देखना नहीं, कभी नजर करना नहीं। नजर करने का समय मिलता नहीं। आहाहा! वह भव

खो बैठता है। अरे! बाहर में यह किया... यह किया... **जो सुख का मन्दिर है,...** प्रभु तो सुख का घर है और मन्दिर है। मुनि के घर में अन्तरदीप से प्रकाशित है और स्वयं सुख का मन्दिर है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का मन्दिर। अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतिमा भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसे सुख का मन्दिर है। ऐसा कहकर क्या कहा? कि जिसने दर्शनमोह आदि मिथ्यात्व पर विजय प्राप्त की है, ऐसे योगियों को नमस्कार करनेयोग्य है, क्योंकि उसे ख्याल में आया है। जिसे ख्याल में नहीं आया, वह नमस्कार क्या करे? जो चीज़ जिसके ख्याल में आयी नहीं, वह नमस्कार क्या करे? आहाहा!

यह चैतन्य हीरा, देह में भगवान चैतन्य हीरा अनन्त-अनन्त चैतन्य के आनन्द के प्रकाश से विराजमान, उसे नमस्कार करनेयोग्य क्यों? उसने पहिचाना, वह नमस्कार कर सकता है, ऐसा सिद्ध करते हैं और **विजय प्राप्त किये हुए योगियों से...** ऐसा। **दर्शनमोहादि पर विजय प्राप्त...** मिथ्यात्व पर (विजय प्राप्त), ऐसे **योगियों से नमस्कार करनेयोग्य है...** आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचा है। थोड़े-थोड़े शब्दों में बहुत रखा है। प्रभु सुख का मन्दिर है। अन्दर आत्मतत्त्व अतीन्द्रिय आनन्द का मन्दिर है। जिसमें प्रवेश करने से अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, ऐसा यह आत्मा है। यह सुख बाहर में कहीं नहीं है। इसके पैसे में, इसकी स्त्री, पुत्र, धूल में, मकान में, इज्जत में, शरीर की जवानी में, माँग पाड़ने में। यह करते हैं न क्या? अभी वापस सब क्या करते हैं? सवेरे उठकर कंघा रखे और सवेरे दर्पण में देखे। छोटा दर्पण होवे तो ऐसा मुँह पूरा... ऐसे-ऐसे किया करे। आहाहा! प्रभु! परन्तु तूने तुझे देखा? वह तो धूल है, वह तो मिट्टी है, वह श्मशान की मिट्टी है। उस देह की श्मशान में मिट्टी होनेवाली है। अन्दर भगवान आत्मा विराजता है। वह तो... आहाहा! **सुख का मन्दिर है,...** अतीन्द्रिय आनन्द का सागर मन्दिर है। आहाहा! कैसे जँचे? बाहर की बातों के कारण यह करना... यह करना... यह करना... आहाहा! फिर एकान्त लगे न? संसार से निवृत्त नहीं होता। एक तो पूरे दिन पाप में पड़ा। उसमें धर्म के नाम से आवे तो उसे ऐसा क्रियाकाण्ड बतावे कि यह व्रत करो, तप करो, अपवास करो। अपवास है, वह तप है; तप है, वह निर्जरा है। निर्जरा है, वह धर्म का कारण है। धर्म जल्दी हुआ। धूल भी नहीं। ऐसे अपवास करके मर जा न! अनन्त अपवास किये हैं, वह तो लंघन है।

अन्दर आनन्द का नाथ सुख का मन्दिर प्रभु! उसे अन्दर में देखे बिना, जाने बिना

तुझे उसका बहुमान कहाँ से आयेगा ? आहाहा ! और पर का बहुमान कब मिटेगा। दया, दान, राग आदि विकार है, उसकी महिमा कब मिटेगी ? आहाहा ! सुख का तो मन्दिर है। प्रभु ! अन्दर सुख का मन्दिर विराजता है। **उस सहज तत्त्व...** अब मुनिराज कहते हैं। ऐसा स्वभाविक तत्त्व है, उसे **मैं सदा अत्यन्त नमस्कार करता हूँ।** आहाहा ! मैं साधक हूँ, इसलिए मैं चैतन्यमूर्ति को अन्दर में एकाग्रता से विशेष बढ़ाता हूँ। अन्दर एकाग्रता से शुद्धि की वृद्धि करता हूँ। सदा अत्यन्त नमता हूँ। आहाहा ! विकल्प में भी नहीं आता। निर्विकल्प में रहता हूँ। आहाहा ! ऐसा धर्म ! यहाँ बाहर में धर्म सीधा सट्ट कर डाला (कि) मूर्तिपूजा करो, गिरनार की यात्रा कर डालो तो हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। इसके पुण्य का भी ठिकाना नहीं। अभी इसके शुभभाव में कैसा है, वह शुभभाव है। शुभभाव तो राग है, जहर है। अरे रे ! भगवान तो आनन्द का मन्दिर है।

ऐसा जो सहज तत्त्व है। अन्दर सहज तत्त्व प्रभु विराजता है। प्रत्येक आत्माा ऐसा ही है परन्तु इसकी उसे खबर नहीं है। ऐसे **सहज तत्त्व को मैं सदा अत्यन्त नमस्कार करता हूँ।** अर्थात् मेरा झुकाव ही अन्दर स्वभाव सन्मुख है सदा निरन्तर। नींद आवे तो भी अन्दर एकाग्रता है। स्वभाव में से हटता नहीं। आहाहा ! **मैं सदा अत्यन्त नमस्कार करता हूँ।** आहाहा ! मुनि है न ? मुनि की दशा तो अन्तर आत्मा के आनन्द का बल विशेष होता है। प्रचुर-प्रचुर स्वसंवेदन। उन्हें आत्मा का बहुत ही वेदन होता है, उन्हें मुनि कहते हैं। ऐसा कहे, यह क्रियाकाण्ड करे, वस्त्र छोड़े वह साधु-वाधु नहीं। जिन्हें अन्तर में आनन्द का प्रचुर रत्न प्रचुररूप से जिन्हें वेदन में आवे, अनुभव में उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। उत्कृष्टरूप से बहुत... उसे यहाँ साधु कहा जाता है। जैनदर्शन में उसे साधु कहा जाता है। दूसरे सबको साधु नहीं कहा जाता। आहाहा ! यह १५०वाँ (कलश हुआ)।

श्लोक-१५१

(पृथ्वी)

प्रनष्ट-दुरितोत्करं प्रहत-पुण्य-कर्मव्रजं,
प्रधूतमदनादिकं प्रबलबोधसौधालयम्।
प्रणामकृततत्त्ववित् प्रकरणप्रणाशात्मकं,
प्रवृद्ध-गुण-मन्दिरं प्रहत-मोह-रात्रिं नुमः ।।१५१।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ निश्चयप्रत्याख्यानाधिकारः षष्ठः श्रुतस्कन्धः।

(वीरछन्द)

पाप राशि को नष्ट किया है पुण्य समूह हना जिसने।
प्रबल ज्ञान का महल अहो कामादिक नष्ट किये जिसने॥
तत्त्वज्ञों से सदा वन्द्य जो कार्यकलाप विनाश स्वरूप।
मोह विनाशक, पुष्ट गुणों का धाम उसे मैं सदा नमूँ॥१५१॥

[श्लोकार्थः] जिसने पाप की राशि को नष्ट किया है, जिसने पुण्यकर्म के समूह को हना है, जिसने मदन (-काम) आदि को खिरा दिया है, जो प्रबल ज्ञान का महल है, जिससे तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं, जो प्रकरण के नाशस्वरूप है (अर्थात् जिसे कोई कार्य करना शेष नहीं है—जो कृतकृत्य है), जो पुष्ट गुणों का धाम है तथा जिसने मोहरात्रि का नाश किया है, उसे (-उस सहज तत्त्व को) हम नमस्कार करते हैं॥१५१॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार नाम का छठवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक -१५१ पर प्रवचन

१५१ श्लोक है न?

प्रनष्ट-दुरितोत्करं प्रहत-पुण्य-कर्मव्रजं,
प्रधूतमदनादिकं प्रबलबोधसौधालयम्।
प्रणामकृततत्त्ववित् प्रकरणप्रणाशात्मकं,
प्रवृद्ध-गुण-मन्दिरं प्रहत-मोह-रात्रिं नुमः।।१५१।।

जिसने पाप की राशि को नष्ट किया है,... भगवान आत्मा जिसने अन्दर देखा। समकित हुआ और समकित धर्म का पहला सोपान हुआ। उसे कहते हैं कि **पाप की राशि को नष्ट किया है,...** अशुभभाव का तो जिसने नाश किया है। आहाहा! और **पुण्यकर्म के समूह को हना है,...** शुभभाव को भी हन डाला है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव तो पुण्य है। उस पुण्य को भी धर्मी जीव ने हन डाला है। उससे पार अन्दर भगवान विराजता है, वहाँ जिसकी बैठक हुई है। अनादि से अज्ञानी को राग में बैठक थी, वह बैठक बदल गयी है। आहाहा!

जिसने पुण्यकर्म के समूह को हना है, जिसने मदन (-काम) आदि को खिरा दिया है,... काम की इच्छा को तो जिसने खिरा डाला है। ऐसे काम में तो दुःख है। इन्द्रिय के विषय में, इच्छा और भोग, वह तो दुःख है। वहाँ सुख है नहीं। जहर है। इन्द्रिय के विषय में जहर है। यह शुभभाव है, वह जहर है, तो वह इन्द्रिय का विषय तो अशुभ है। आहाहा! ऐसे **मदन (-काम) आदि को खिरा दिया है,...** जिसने वेद की वासना खिरा डाली है, यह स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, ऐसी वासना का जिसने नाश किया है। आहाहा!

जो प्रबल ज्ञान का महल है,... प्रबल ज्ञान का महल है। भीतर जाकर प्रवेश कर तो तुझे महल मिलेगा। आहाहा! मैल को टाल तो महल मिलेगा। मैल अर्थात् शुभ और अशुभराग को टाल तो अन्दर ज्ञानमहल मिलेगा। आहाहा! बड़े महल आते हैं या नहीं? तीन करोड़-साढ़े तीन करोड़ का महल नहीं? कौन सा गाँव? मैसूर। मैसूर में तीन-साढ़े तीन करोड़ का बँगला। राजा को अनुमति दी परन्तु राजा निकल गया है। बड़ा मकान।

मकान खाली पड़ा है। साढ़े तीन करोड़ रुपये का। उस दिन, हों! धूल तो पड़ी है। धूल कहाँ उसके साथ आती है? आहाहा! एक बार वहाँ देखने गये थे। आहाहा!

भगवान **प्रबल ज्ञान का महल है,...** भगवान। यह महल है। इस पर सीढ़ियाँ चढ़। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ (गुणस्थान), यह चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ हैं। उस महल में चढ़ने की ये सीढ़ियाँ हैं। आहाहा! कोई शुभ और अशुभ क्रिया, वह उसकी सीढ़ियाँ नहीं हैं। वह तो उसे अटकानेवाल मैल और दुःख है। आहाहा! अब इसे ऐसा करना। एक तो निवृत्ति भी मिलती नहीं। धन्धे के कारण दो घड़ी की निवृत्ति भी नहीं मिलती। अब उसमें ऐसा करना। आहाहा! ग्राहक आवे, उसमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। अब उसमें एक ग्राहक पाँच हजार का माल लेने आया हो और उसमें पाँच सौ की आमदनी हो एक ग्राहक में मानो तो आहाहा! तल्लीन हो जाता है। सवेरे का आहार शाम हो जाता है। अभी नहीं... अभी नहीं... शाम को चार बजे। इतनी लवलीन हो जाता है। बनिया-व्यापारी... आहाहा! परन्तु तू कौन है? कहाँ है? - उसके सामने तो देख।

भगवान अन्दर तीन लोक का नाथ विराजता है। अनन्त चैतन्यरत्न का समुद्र है, उसके सामने देखना... आहाहा! परन्तु वह क्या होगा, कहे। भाई ने पूछा था न कि वह बड़ा चैतन्यस्तम्भ है? चित्त को बाँधा है, ऐसा आया था न? स्तम्भ से बाँधा है। वह स्तम्भ कैसा होगा? चन्दुभाई ने पूछा था। वह ध्रुव है, ध्रुव है। अनादि-अनन्त ध्रुव है। उस ध्रुव के स्तम्भ से पर्याय को बाँधा। आहाहा! ध्रुव वस्तु है, उसमें उत्पाद-व्यय और पर्याय उसका धर्म है, उस उत्पाद-व्यय की पर्याय को ध्रुव के स्तम्भ के साथ बाँधा। वह पर्याय... उसे यहाँ बाँधा। ध्रुव के साथ बाँधा। आहाहा! सब भाषा अलौकिक लगती है। ऐसा उपदेश कहाँ से निकाला! वह सुना सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, यह करो, वह करो, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करो। उसमें सूझ तो पड़े। (ऐसा लोग कहते हैं)।

जिसने काम को तो **खिरा दिया है, जो प्रबल ज्ञान का महल है,...** प्रबल ज्ञान का बड़ा महल है। जैसे घुसता जाए, सीढ़ियाँ चढ़ता जाए, वैसे केवलज्ञान पा जाए। ऐसा वह केवलज्ञान का महल है। आहाहा! धीरज से देखे तो खबर पड़े। नहीं तो स्फटिक रत्न का महल हो, स्फटिक रत्न का और उसकी सीढ़ियाँ स्फटिक रत्न की हो तो उसे धीरज से चढ़ना पड़े। वह चढ़े तो वहाँ नीचे दिखे। स्फटिक रत्न का है न? रावण को स्फटिक रत्न

का महल था। रावण को स्फटिक के महल थे। सीढ़ियाँ स्फटिक की, मकान स्फटिक का। फिर ऐसे जहाँ देखे, वहाँ वह दिखा करे। चलना कहाँ? यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ देखे वहाँ प्रकाश दिखता है तो फिर वह वहाँ से निकल कैसे सकेगा? आहाहा! ऐसा चैतन्य हीरा अन्दर है।

जिसे तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं,... अज्ञानी प्रणाम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी जो प्रणाम करता है, वह तत्त्व को प्रणाम नहीं करता। उसे तत्त्व का भान कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? आता है न? समन्तभद्र में स्तुति आती है, समन्तभद्र में। प्रभु! अज्ञानी आपको नहीं मानता, तत्त्वज्ञानी बिना आपको नहीं मानता, अज्ञानी नहीं मानता, ऐसा है। आहाहा! जिसे यह स्वरूप ही जानने में नहीं आया और जिसे इस स्वरूप की महिमा और महत्ता जिसे अभी दिखायी नहीं दी, वह इसे कैसे नमस्कार करे। बड़े को नमस्कार करे। छोटे को नमस्कार करेगा? आहाहा!

तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं,... आहाहा! भगवान चैतन्यसूर्य अन्दर विराजता है। शरीर से पार, वाणी से पार, मन के विकल्प से पार अन्दर भिन्न भगवान है, उसे तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं। आहाहा! बाहर भगवान आदि को प्रणाम करते हैं, वह व्यवहार है-ऐसा कहते हैं। इसके लिये यह कहा है। वह निश्चय प्रणाम यह है। अपने स्वभाव में अनुभव करके प्रणाम करना, नमस्कार करना, प्रणमना, यह। **जो प्रकरण के नाशस्वरूप है (अर्थात् जिसे कोई कार्य करना शेष नहीं है—जो कृतकृत्य है),...** आहाहा! वस्तु है, वह तो कृतकृत्य है। कार्य करना हो, वह तो पर्याय में है। वस्तु भी कृतकृत्य है। उसकी दृष्टि और स्थिरता करे, तब पर्याय में कृतकृत्यपना आता है। कृतकृत्य वस्तु है। कार्य करना आदि वस्तु है, अनादि-अनन्त तत्त्व का सागर, उसके सन्मुख देखे, तब पर्याय में धीमे-धीमे आगे बढ़ता है। आहाहा!

वह तो **प्रकरण के नाशस्वरूप है...** अर्थात् जिसे कुछ भी करना रहा नहीं। ऐसी वह वस्तु कृतकृत्य है। आहाहा! वह वस्तु कृतकृत्य है, तो उस वस्तु के आश्रय से अनुभव होने पर पर्याय में कृतकृत्य सिद्ध भगवान हो गये। भगवान को कुछ करना नहीं रहता। सिद्ध भगवान हैं, वे कृतकृत्य हैं। तब पर्याय में पूर्ण हो गये। पर्याय में कार्य पूर्ण हो गये। क्योंकि वस्तु तो कृतकृत्य है, उसके आश्रय से प्रगट हुई पर्याय कृतकृत्य है। आहाहा! **जो**

पुष्ट गुणों का धाम है... आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर अनन्त-अनन्त गुण के पुष्ट गुणों का धाम है। उसका एक भी गुण कृश और कम नहीं हुआ। सूखता नहीं, कम नहीं होता। विपरीत नहीं होता। आहाहा!

पुष्ट गुणों का धाम परमात्मा स्वयं है। यह आत्मा की बात है, हों! आहाहा! देह-देवल में विराजता भगवान... आहाहा! नर-नारायण होता है। वह अन्दर नारायण स्वरूप है। अन्यमति कहते हैं, वह नारायण नहीं। यह तो परमात्मस्वरूप पावे, वह नारायण है। आहाहा! **जो पुष्ट गुणों का धाम है...** आहाहा! **तथा जिसने मोहरात्रि का नाश किया है,...** मोहरूपी अन्धकार का तो जिसने नाश किया है। आहाहा! मिथ्यात्वरूपी राग से कल्याण होगा, ऐसी जो मिथ्या भ्रान्ति; पुण्य क्रिया करते-करते कल्याण होगा, ऐसी जो मिथ्यात्व की भ्रान्ति; देह की क्रिया करते-करते भी लाभ होगा, ऐसी जो मिथ्यात्व की भ्रान्ति, उस सब मोहराशि का नाश किया है। आहाहा! **उसे (-उस सहज तत्त्व को) हम नमस्कार करते हैं।** आहाहा! ऐसे तत्त्व को हम नमस्कार करते हैं। आहाहा! हमारे नमस्कार करनेयोग्य होवे तो वह भगवान मेरा आत्मा ऐसा है। आहाहा! वाणी है, वह वाणी कैसी है! मुनि की है। जंगल में बसनेवाले मुनि, दिगम्बर मुनि... आहाहा! सच्चे सन्त थे, भावलिंगी थे। आनन्द का प्रचुर वेदन था। वह कहते हैं कि हम ऐसे सहज तत्त्व को, स्वभाविक तत्त्व है उसे। पर्याय है, वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है, उत्पन्न होती है, नष्ट होती है परन्तु तत्त्व वस्तु है, वह तो सत् अनादि है। वह उत्पन्न और व्यय नहीं होता।

(-उस सहज तत्त्व को) हम नमस्कार करते हैं। आहाहा! यह पंचम काल के ९०० वर्ष पहले के मुनि यहाँ ऐसी बात करते हैं। आहाहा! उन्हें ऐसा नहीं कि प्रजा को ऐसी बात जँचेगी या नहीं? यही बात करने और बैठाने की है। दूसरी सब बातें व्यर्थ है। आहाहा! समय चला जाता है। देह की स्थिति पूरी होने का तो निर्णय है। जितना समय जाता है, वह सब मृत्यु के समीप जाता है। यह जानता है कि मैं बड़ा होता हूँ। कहते हैं माँ जानती है बड़ा होता है। भगवान कहते हैं कि वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! इसका मृत्यु का समय निश्चित है। जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस संयोग में देह छूटना है, वह छूटेगी। उसमें दूसरा लाख उपाय करे तो कुछ हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

हम नमस्कार करते हैं। लो, यह कलश पूरा हुआ।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह... है। मुनि है न? मुनि को देह ही होती है। वस्त्र-पात्र नहीं होते। **ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार नाम का छठवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** निश्चय-प्रत्याख्यान इसे कहना। अन्तर आनन्द में डूबकर आनन्द में रमना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। ऐसे हाथ जोड़कर बाधा का त्याग करना, प्रत्याख्यान किया, वह नहीं। वह तो सब देह की क्रिया है। अन्दर विकल्प उठते हैं, वह राग है।

यहाँ तो रागरहित आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति है, उसमें अन्तर में जम जाना। पहिचानकर, अनुभव करके जमना, स्थिर होना, उसका नाम प्रत्याख्यान है। जैनदर्शन में उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। बाकी दूसरे सबको अप्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा! यह अधिकार पूरा हुआ।

— ७ —

परमालोचनाधिकारः

आलोचनाधिकार उच्यते ह्न

णोकम्मकम्मरहियं विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि समणस्सालोयणं होदि।।१०७।।

नोकर्मकर्मरहितं विभावगुणपर्ययैर्व्यतिरिक्तम्।
आत्मानं यो ध्यायति श्रमणस्यालोचना भवति।।१०७।।

निश्चयालोचनास्वरूपाख्यानमेतत्। औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि हि नोकर्माणि, ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयवेदनीयायुर्नामगोत्राभिधानानि हि द्रव्यकर्माणि। कर्मोपाधिनिरपेक्षसत्ताग्राहकशुद्धनिश्चयद्रव्यार्थिकनयापेक्षया हि एभिर्नोकर्मभिर्द्रव्यकर्मभिश्च निर्मुक्तम्। मतिज्ञानादयो विभावगुणा नरनारकादिव्यञ्जनपर्यायाश्चैव विभावपर्यायाः। सहभुवो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाश्च। एभिः समस्तैः व्यतिरिक्तं, स्वभावगुणपर्यायैः संयुक्तं, त्रिकालनिरावरणनिरञ्जनपरमात्मानं त्रिगुप्तिगुप्तपरमसमाधिना यः परमश्रमणो नित्यमनुष्ठानसमये वचनरचनाप्रपञ्चपराङ्मुखः सन् ध्यायति, तस्य भावश्रमणस्य सततं निश्चयालोचना भवतीति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(आर्या)

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।

उक्तञ्चोपासकाध्ययने ह्न

(आर्या)

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महा-व्रत-मामरण-स्थायि निःशेषम्।।

तथाहि ह्न

अब, आलोचना अधिकार कहा जाता है।

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना॥१०७॥

अन्वयार्थ : [नोकर्मकर्मरहितं] नोकर्म और कर्म से रहित तथा [विभाव-गुणपर्ययैः व्यतिरिक्तम्] विभावगुणपर्यायों से [१]व्यतिरिक्त [आत्मानं] आत्मा को [यः] जो [ध्यायति] ध्याता है, [श्रमणस्य] उस श्रमण को [आलोचना] आलोचना [भवति] है।

टीका : यह निश्चय-आलोचना के स्वरूप का कथन है।

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर, वे नोकर्म हैं; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नाम के द्रव्यकर्म हैं। [२]कर्मोपाधिनिरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्धनिश्चयद्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से परमात्मा इन नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित है। मतिज्ञानादिक वे विभावगुण हैं और नरनारकादि व्यंजनपर्यायें ही विभावपर्यायें हैं; गुण सहभावी होते हैं और पर्यायें क्रमभाव होती हैं। परमात्मा इन सबसे (-विभावगुणों तथा विभावपर्यायों से) व्यतिरिक्त है। उपरोक्त नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित तथा उपरोक्त समस्त विभावगुणपर्यायों से व्यतिरिक्त तथा स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त, त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को त्रिगुप्ति गुप्त (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी) परमसमाधि द्वारा जो परम श्रमण सदा अनुष्ठान समय में वचनरचना के प्रपंच से (-विस्तार से) पराङ्मुख वर्तता हुआ ध्याता है, उस भावश्रमण को सतत निश्चय आलोचना है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में २२७वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

मोह विलास प्रसारित जो यह कर्म उदय कर आलोचन।
चित्स्वरूप निष्कर्म निजातम में निज से करता वर्तन॥

[श्लोकार्थः] मोह के विलास से फैला हुआ जो यह उदयमान (-उदय में आनेवाला) कर्म, उस समस्त को आलोचकर (-उन सर्व कर्मों की आलोचना करके),

मैं निष्कर्म (अर्थात् सर्व कर्मों से रहित) चैतन्यस्वरूप आत्मा में आत्मा से ही (-स्वयं से ही) निरन्तर वर्तता हूँ।

और उपासकाध्ययन में (श्री समन्तभद्रस्वामीकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार में १२५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

कृत कारित अनुमोदित पापपुञ्ज का निश्छल आलोचन।
करके पूर्ण महाव्रत को तू मरण समय तक कर धारण॥

[श्लोकार्थः] किये हुए, कराये हुए, और अनुमोदन किये हुए सर्व पापों की निष्कपटरूप से आलोचना करके, मरणपर्यन्त रहनेवाला, निःशेष (-परिपूर्ण) महाव्रत धारण करना।

गाथा -१०७ पर प्रवचन

अब, आलोचना, संवर अधिकार। विगत काल का प्रतिक्रमण आता है न ? भविष्य काल का प्रत्याख्यान और वर्तमान का संवर। वह यह आलोचना संवर है। वर्तमान संवर, यह अधिकार है।

णोकम्मकम्मरहियं विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि समणस्सालोयणं होदि।।१०७।।

नीचे हरिगीत

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना॥१०७॥

टीका : यह निश्चय-आलोचना के स्वरूप का कथन है। व्यवहार से आलोचना तो अपने को पाप लगा हो तो गुरुदेव के पास कहे। यह सब व्यवहार पुण्य है। वह सब पुण्यभाव है। अपने को पाप लगा हो और गुरु के पास साक्षी रखकर प्रायश्चित्त ले। वह सब पुण्य है। यह निश्चय आलोचना है। वह वास्तव में निश्चय आलोचना नहीं, वह व्यवहार है। आहाहा!

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर वे नोकर्म हैं;... देखा ? पाँचों ही शरीर को नोकर्म कहा। तीन लेना है। नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म। आत्मा तीनों से रहित है। अन्दर आत्मा तीनों से रहित है। पहले नोकर्म से रहित है। नोकर्म कौन ? एक तो यह औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर देव को, आहारकशरीर मुनि को, तैजस और कार्मण सबको। आहाहा! कार्मणशरीर भी नोकर्म में आ गया। कार्मणशरीर, वह नोकर्म है। पाँचों ही शरीर नोकर्म है। वह आत्मा में नहीं है। आत्मा में शरीर-बरीर नहीं। यह तो शरीर में शरीर है। आहाहा! ऐसी मिलावट लगती है। आत्मा बिना मानो शरीर चलता नहीं, आत्मा बिना बोलता नहीं, ऐसा हो जाता है। आत्मा बोलता भी नहीं और आत्मा चलता भी नहीं। आत्मा तो आनन्दमूर्ति त्रिकाली एकरूप स्थित है। आहाहा! ऐसी बात है। यह पाँच शरीर, वह नोकर्म है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नाम के द्रव्यकर्म हैं। ये आठ कर्म द्रव्यकर्म हैं। वे पाँच शरीर वह नोकर्म है और **कर्मोपाधिनिरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्धनिश्चयद्रव्यार्थिकनय की...** दृष्टि से क्या कहते हैं ? जिन्हें कर्म की उपाधि की अपेक्षा नहीं और निज सत्ता, जो चैतन्य की सत्ता निज है, निज अस्तित्व जो है, उसे ग्राहक **शुद्धनिश्चयद्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से...** शुद्धद्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से.. आहाहा। **परमात्मा...** है ? परमात्मा अर्थात् यह आत्मा, हों! परमस्वरूपी, परमात्मा अर्थात् परमस्वरूपी आत्मा। आहाहा! **इन नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित है।** आहाहा! भगवान को नोकर्म भी नहीं और जड़ द्रव्यकर्म भी आत्मा को नहीं। आत्मा को कर्म नहीं। कर्म ने घुमाया, कर्म ने भटकाया, कर्म ने आड़ा आंक डाला, ऐसी बातें करते हैं न ? यहाँ तो कहते हैं, कर्म भिन्न चीज़ है, आत्मा भिन्न चीज़ है। कर्म से आत्मा भिन्न चीज़ है। शरीर से तो भिन्न है, परन्तु कर्म से भी भिन्न चीज़ है।

मतिज्ञानादिक वे विभावगुण हैं... मतिज्ञानादि पर्याय है, परन्तु उन्हें विभावगुण कहा गया है। आहाहा! क्योंकि साथ में रहते हैं न ? मति-श्रुतज्ञान साथ में रहते हैं न ? साथ में रहते हैं, इस अपेक्षा से गुण कहा है। सहवर्ती गुण। वैसे तो सहवर्ती त्रिकाल। यहाँ वह नहीं। यहाँ तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान साथ में रहते हैं, इसलिए उन्हें सहवर्ती गुण कहने में आया है। सहवर्ती परन्तु विभावगुण, हों! विभावगुण हैं। आहाहा! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, वे विभावगुण हैं।

और नरनारकादि व्यंजनपर्यायें ही विभावपर्यायें हैं;... यह नर शरीर, नारकी का शरीर, देव का (शरीर), वह **व्यंजनपर्यायें ही विभावपर्यायें हैं;...** आहाहा! **गुण सहभावी होते हैं...** ये गुण। यह, हों! मतिज्ञानादि विभावगुण। यह मति और श्रुतज्ञान साथ में होते हैं न? इस अपेक्षा से बात ली है। **मतिज्ञानादिक वे विभावगुण हैं और नरनारकादि व्यंजनपर्यायें ही विभावपर्यायें हैं; गुण सहभावी होते हैं और पर्यायें क्रमभाव होती हैं।** नारकादि व्यंजनपर्यायें एक के बाद एक क्रमभावी होती है। वरना तो त्रिकाल गुण जो है, वह सहभावी है सहभावी। वर्तमान पर्याय क्रमभावी है, परन्तु यहाँ अपेक्षा से मतिज्ञानादि एक साथ में हैं, इसलिए उन्हें विभावगुण कहा और सहभावी कहा। आहाहा! कहो, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान भी विभावगुण है। गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। वह पर्याय है परन्तु विभावपर्याय है, सम्यक् नहीं। सम्यक् नहीं। सम्यक्मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय वे सम्यक्ज्ञानी के चार हैं, वे भी विभावगुण में गिनने में आये हैं। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय का लक्ष्य छोड़ने के लिये वे चारों ही विभावगुण—पर्याय कहकर उनका लक्ष्य छुड़ाते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा उनसे रहित है, उसे देख न! विभावगुण से रहित है, वह आत्मा है। आहाहा! और विभावपर्याय... आहाहा!

परमात्मा इन सबसे... आहाहा! परमात्मा अर्थात् यह आत्मा, हों! परमात्मा अर्थात् अरिहन्त और सिद्ध के नहीं। **परमात्मा इन सबसे (-विभावगुणों तथा विभावपर्यायों से) व्यतिरिक्त है।** अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! मतिज्ञान सम्यक्, हों! सम्यक्। श्रुतज्ञान सम्यक्, उससे भी उसे विभावपर्याय गिनकर गुण गिना। भगवान उससे भिन्न है। क्योंकि वह एक समय की पर्याय है और यह वस्तु त्रिकाल स्थित है। द्रव्य त्रिकाल स्थित है, इसलिए आत्मा उस विभावपर्यायरहित है। आहाहा! विभावगुण कहा।

उपरोक्त नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित तथा उपरोक्त समस्त विभावगुणपर्यायों से व्यतिरिक्त... विभावगुण मतिज्ञानादि पर्याय से भिन्न **तथा स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त,...** आहाहा! याद रहना कठिन है। कितना (याद रखना)? यह भाषा अलग, भाव अलग। स्वभावगुणपर्याय और विभावगुणपर्याय, यह वहाँ सुनी नहीं होगी। आहाहा! स्वभावगुणपर्याय स्वयं। अपना जो स्वभाव है, उसका गुण और उसकी निर्मल पर्याय से संयुक्त। आहाहा! भले कारणपर्याय ले अन्दर। वह तो गुण के भेदरूपी पर्याय और कारणपर्याय।

स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त,... उनसे सहित आत्मा है। बहुत बोल आये हैं। एक तो मति-ज्ञानादि को विभावगुण कहना। सम्यग्ज्ञान, हों! आहाहा! केवलज्ञान को एक को ही स्वभाव कहा है। यह क्या कहलाता है? आलोचना। नय का अधिकार है न? क्या नाम? गुणधर्मनय, और धर्मगुण... आलापपद्धति, आलापपद्धति। आलापपद्धति में सबको विस्तार से वहाँ लिखा है।

स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त,... है। अपना स्वभावज्ञान, दर्शन और आनन्द तथा उसकी पर्याय कारणपर्याय, उससे वह आत्मा सहित है। आहाहा! मति-ज्ञानादि विभाव से भी रहित है। सम्यक्, हों! मिथ्यादर्शन की बात ही नहीं। यह तो सम्यक् मतिज्ञानादि भी विभावगुणपर्याय है। आहाहा! उससे रहित आत्मा का स्वभाव है। इसमें याद कितना रखना?

त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को... ऐसा जो यह आत्मा, वह त्रिकाल निरावरण निरंजन आत्मा है। वस्तु जो है, वह त्रिकाल निरावरण है। यह तो पर्याय में राग का सम्बन्ध है। द्रव्य को कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! भगवान नित्यस्वरूप ध्रुव नित्य है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण। कब? अभी। आहाहा! आत्मा अन्दर वस्तु है, देह के मन्दिर में भिन्न चैतन्यरत्न भगवान (विराजता है), वह त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! **त्रिकाल-निरावरण निरंजन...** जिसे अंजन—मैल नहीं। मतिज्ञानादि से रहित है तो फिर और मैल-फैल कहाँ से आया? आहाहा! पहले इसमें भी लिया है न? केवलज्ञान, वह स्वभाव है; दूसरे चार विभाव हैं। पहले ध्यान अधिकार में, पहले अधिकार में लिया है। केवलज्ञान और केवलदर्शन दो स्वभाव हैं। बाकी सब विभाव हैं। उन्हें कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है न? आहाहा! क्षयोपशमभाव भी विभाव है। आहाहा!

परम **त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को...** परमात्मा अर्थात् इस आत्मा को। परमात्मा क्यों कहा? परमस्वरूप आत्मा अर्थात् स्वरूप। परमस्वरूप को **त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को त्रिगुप्ति गुप्त (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी)...** मन, वचन और काया से रहित होकर। तीन गुप्त से गुप्त अन्दर। आहाहा! मन, वचन और काया से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। दया, दान और व्रत के परिणाम से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो त्रिकाल त्रिगुप्ति से गुप्त है। है? **त्रिगुप्ति गुप्त (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्त)...** आहाहा!

ऐसी **परमसमाधि द्वारा...** यह अन्यमति के बाबा समाधि करते हैं, वह नहीं। अन्तर की शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषाय, वीतरागी अकषाय शान्ति। लोगस्स में आता है न? '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु।**' लोगस्स में आता है। '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु।**' समाधि अर्थात् यह शान्ति। पुण्य-पापरहित आत्मा की शान्तदशा, वह समाधि है। वे बाबा समाधि करते हैं, वह समाधि नहीं। आहाहा! **परमसमाधि...** वापस। **परमसमाधि द्वारा जो परम श्रमण...** आहाहा! परम शब्द बहुत प्रयोग करते हैं। **परमसमाधि द्वारा जो परम श्रमण सदा अनुष्ठान समय में...** सदा अपने आचरण के समय में **वचनरचना के प्रपंच से (-विस्तार से) पराङ्मुख...** रहित। आहाहा! प्रतिक्रमण के वचन बोलना, उनसे पराङ्मुख है, कहते हैं। आहाहा! प्रतिक्रमण बँधा हुआ है और उसके वचन हैं, बोलने में जो शुभराग है, उसके प्रपंच से रहित। आहाहा! **वचनरचना के प्रपंच से (-विस्तार से) पराङ्मुख..** जिसमें यह वचन की रचना ही नहीं है। जिसमें राग-दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत का अनुकम्पा का भी विकल्प जिसमें नहीं है, ऐसा जो भगवान अन्दर आत्मा।

वह **परम श्रमण सदा अनुष्ठान समय में वचनरचना के प्रपंच से (-विस्तार से) पराङ्मुख वर्तता हुआ...** वचन विस्तार छोड़कर अन्दर में आनन्द में स्थिर होता हुआ। आहाहा! तब उसे आलोचना होती है, तब संवर होता है। धर्म का उपाय संवर तब होता है। आहाहा! **वर्तता हुआ ध्याता है,...** पर से पराङ्मुख होकर अन्तर में ध्याता है, ध्यान करता है। आहाहा! आनन्द को चूसता है। पिलाते हैं न? बालक को पिलाते हैं न दूध; उसी प्रकार यह आनन्द को पीता है। अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान है, उसे वह पीता है। उसे ध्यान में ध्याता है।

उस भावश्रमण को... उसका नाम भावसाधु। आहाहा! **सतत निश्चय आलोचना है।** उसे निरन्तर सतत् आलोचना वर्तती है। आहाहा! निरन्तर आलोचना है। सवेरे या शाम प्रतिक्रमण करना और उस समय संवर, आलोचना है... आहाहा! वह तो व्यवहार है। व्यवहार आता अवश्य है। व्यवहार होता है परन्तु यह है। **भावश्रमण को सतत निश्चय आलोचना है।**

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में २२७वें श्लोक द्वारा)... विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव।)